जैन धर्म और संगीत

गुलाबचन्द्र जैन

भगवान महावीर ने संसार को अनादि-अनंत कहा है। संसार का न आदि है और न अंत। इसलिये जैन दर्शनकारों ने कहा है कि संसार के उत्थान और पतन का क्रम चलता रहता है। इसी उत्थान और पतन की अवस्था में तीर्थंकरों का जन्म होता है और वे इस क्रमानुसार अनन्त हो गये हैं और होते रहेंगे। जितने भी पूर्वकाल में तीर्थंकर हो गये हैं उन्होंने अपना प्रवचन राग 'मालकोश' में ही दिया और भविष्य में होने वाले भी 'मालकोश' की ध्वनि में ही देवेंगे। संगीत के विषय की उत्पत्ति का निश्चय करना बालचेष्टा ही है। इतना अवश्य है कि रागों में उत्थान और पतन समयानुकूल, प्रकृति के परिवर्तनानुसार होता ही रहता है। इसी दृष्टि से हम लोग ऐतिहासिक तथ्यों पर विशेष भार देकर उसमें उलझने लगते हैं और ध्वनि की वास्तविक तरंगों और उसके क्रिया एवं शक्ति से हम वंचित हो जाते हैं। जैन दर्शन में रागों का कितना महत्व है और उसका काल कितना लंबा है, यह साधारण मानव के बुद्धिग्राह्य के बाहर की बात है। वर्तमान में मानव, जिनकी बुद्धि सीमित है और अनुप्रेक्षा से रहित है, उपरोक्त तथ्य को मानने को आज भी तैयार नहीं हैं परन्तु जो नवीन वस्तुओं को पुनः प्रकाशित करना चाहते हैं वे तथ्यों को कभी भी अस्वीकार नहीं करते। उनका कहना है कि भूतकाल में जो शक्ति उत्पन्न हुई है उनका नाश कभी नहीं हुआ है। वे इसी आकाश प्रदेश में विद्यमान हैं क्योंकि यदि हम वस्तुओं का विनाश मान लेते हैं तो वस्तुओं का अभाव हो जाता है। वस्तुओं के ही अभाव होने पर उत्पत्ति के आधार का अभाव होता है जो युक्ति संगत नहीं है। जिस प्रकार वायु अस्थिर रहती है उसी तरह प्रत्येक परमाणु भी स्थिर नहीं रहते वे निरंतर गमनागमन कार्य करते रहते हैं। वायु को जिस प्रकार एकत्रित कर उसमें शक्ति पैदा की जाती है उसी प्रकार परमाणु को भी संग्रहीत कर उससे मनचाहा काम लिया जाता है। प्रत्येक परमाणु में रूप, रंग, गंध, स्पर्श एवं शब्द आदि गुण एक दूसरे से भिन्न और अभिन्न रहते हैं। इसलिये उनके संग्रहीत करने में इस बात का ध्यान रखना पड़ता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है कि किस प्रकार के कंपन का और कितनी मात्रा में उपयोग किया जाय कि परमाणुओं का समूह हमारी इच्छा के अनुसार कार्यरूप में परिणत हो। भगवान महावीर ने कहा है कि हमारे मुँह से जो शब्द निकलते हैं वे हमें या दूसरों को सुनाई नहीं पड़ते। जो भाषा या शब्द हमारे मुँह से निकलते हैं, वे इतने सूक्ष्म और तीव्र गतिशील होते हैं कि एक समय जिसका दो भाग नहीं हो सकता, उतने समय में सारे लोकाकाश में वे फैल जाते हैं और दूसरे समय में लोकाकाश के अंतिम हिस्से से टकराकर समूह रूप में परिणित होते हैं तब सामूहिक परमाणु में ध्वनि उत्पन्न होती है जो हमें सुनाई पड़ती है। इसकी पुष्टि शकभाष्य के प्रथम खण्ड और भगवतीसूत्र, परमाणु उद्देशक, पुदगल उद्देशक और भाषा उद्देशक में मिलती है। उपरोक्त उद्देशकों से यह स्पष्ट हो जाता है कि 'परमाणु' पुदगल के रूप में किस प्रकार परिवर्तित होता है और भाषा वर्गणाओं के लिये कितने परमाणुओं एवं परमाणुओं के स्कंधों की आवश्यकता पड़ती है, जो श्रोतेन्द्रियों के ग्रहण योग्य बनती हैं।

वैशेषिक और न्याय दर्शन में भी परमाणु के विषय में बताया गया है कि सूर्य की किरणें छिद्र में से होकर बाहर आती हैं तथा उसमें जो छोटे-छोटे अति सूक्ष्म रजकण दिखाई पड़ते हैं उनका साठवां भाग परमाणु मान लिया गया है। परन्तु जैन दर्शनकारों का कथन है कि अनन्त परमाणुओं का स्कंध बनने पर भी वे दृष्टिगोचर नहीं हो सकते। जैन दर्शनानुसार अनन्त परमाणु के स्कंध वाले, स्कंधों से भी जो अनन्त हो और जब उसका पिण्ड बनता है तब वे इन्द्रिय-ग्राह्य बनते हैं। ऊपर कह आये हैं कि हर एक परमाणु में अपनी विशेष वर्गण शक्ति रहती है। जिस परमाणुओं से भाषा बनती है उन्हें जैन दर्शन में भाषा वर्गणा कहा है। परमाणुओं का स्कंध किस तरह बनता है इसके विषय में कहा गया है कि, 'काय वाङग्रा मन : कर्मयोगः'। अर्थात् मन, बचन और काया के योग से जो एक प्रकार का विशेष रूप से कंपन होता है अथवा जिसे कंपन क्रिया कहा जाता है उस कम्पनानुसार ही परमाणुओं का स्वतः संचय होता रहता है। जिस प्रकार चुम्बकीय शक्ति से लोह के परमाणु स्वतः खिच कर उसमें आ मिलते हैं उसी प्रकार अपने गुणों के अनुसार स्वधर्मी स्वधर्मी में आकर मिलते रहे हैं और कार्यरूप में परिणत होते रहते रहते हैं। उसमें उतार-चढ़ाव अथवा हानि और वृद्धि जो होती रहती है उसका कारण आपस में मिलकर और पुनः अलग-विलग हो जाने में होती है। सामान्य दृष्टि से कम्पन की मात्रा एक सैकेण्ड में 240 मान ली है और उस ध्वनि को मन्द, मध्य तथा तीव्र में विभाजित की है जो 22 श्रुतियों के नाम से कही जाती है। तीव्र में 3800 मात्रायें संगीत के रूप में मान ली गयी है। उससे अधिक मात्रा होने पर वह ध्वनि संगीत न कहलाकर कोलाहल की श्रेणी में आती है। कहने का आशय यह है कि संगीत-शास्त्र में जो श्रुतियों और ध्वनि मात्राओं की रूपरेखा तैयार की है, वह सूक्ष्म दृष्टि से न कर स्थूल दृष्टि से है, क्योंकि कार्य रूप में और इंद्रियों के ग्राह्य योग्ण कितना कम्पन कम से कम आवश्यक है, ताकि वह व्यवहार में सुचारु रूप से उपयोग हो सके। इसलिये उस ध्वनि का नाम संगीत रखा—'सम' अर्थात् सम्यक प्रकार में श्रोतेन्द्रिय की शक्ति में किसी प्रकार से विकार पैदा न करे उसकी शक्ति से वृद्धि और सुचारू रूप से उसमें सहायक भूत हो वह सम्यक ध्वनि ही संगीत कही जाती है। संगीत में तीन अक्षर है सं—गी—त बीच के अक्षर 'गी' अर्थात् ग्रीवा वाणी को निकालने से, 'संत' बचता है। संतों की 'गी'—अर्थात् वाणी को संगीत कहते हैं। रागद्वेष से रहित संतों के हृदय के भाव, उनके उद्गार जो निकलते थे, उसमें ऐसी शक्ति थी कि लोग आकर्षित हो जाते थे और उसको ही भव्य प्राणी लक्ष्य मानकर अनुकरण करते और वही संगीत कहा जाता था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यशोधरा में कवि मैथिलीशरण गुप्त ने भी गीत की परिभाषा कही है—"अधर पर मुस्कराहट है, नैनों से नीर बहता है, हृदय की हूक हँस पड़ती, जिसे जग गीत कहता है।"

जैन आगमों में यह कहा गया है कि जिस समय भगवान महावीर के कान से खीले खींच कर निकाले गये उस समय उन्हें इतनी अधिक वेदना हुई थी कि उनके मुख से ऐसी तेज ध्वनि (चीख) निकली कि जिस पहाड़ी के तले वे काउसग्ग में खड़े थे उसमें दरार पड़ गयी। आज के युग में इस बात को शायद ही कोई बिरला व्यक्ति मानने पर तैयार हो; पर अधिकांश मानने को तैयार नहीं हैं। संगीत की ध्वनि में इतनी शक्ति है तथा आकर्षण है कि वह बड़े-बड़े पहाड़ों में भी दरारें पैदा कर देती है।

प्राणियों को "संगीत" ध्वनि तरंगों के अनुसार सात्विक, राजस तथा तामस प्रकृतियों में बदल देता है। ध्वनि तरंगों का कितना अकाट्य प्रभाव पड़ता है जिसका साक्षात्कार हमें नृत्य में और सरकसों में, मौत की सीढ़ी पर चढ़ने वालों में, लड़ाई में अनेक कर्त्तव्यों को देखकर होता है। शास्त्रों में जो लिखा गया है कि ध्वनि से अनेक बीमारियां कट जाती हैं; उसे आज वैज्ञानिक भी स्वीकार करते हैं।

प्रश्न यहां यह रह जाता है कि भगवान महावीर ने तथा इनके पूर्व में जितने भी तीर्थंकर हुये वे सभी ने "मालकोश" की ध्वनि में ही क्यों प्रवचन दिये हैं। इस विषय के लिये जिज्ञासुओं को चाहिये कि नंदी सूत्र, आवश्यक भाव्य द्रव्यानयोग और भगवती सूत्र आदि आगमों को सूक्ष्म दृष्टि से देखें। इसका सामान्य एक कारण यह भी है कि मालकोश राग में तेज तत्व विशेष रूप से रहे हुये हैं। वैशेषिक जिसके कर्त्ता कणाद, न्याय सूत्र जिसके कर्त्ता गौतम हैं तथा तर्क-संग्रह जिसके कर्त्ता अन्नमट्ट है, उन्होंने अपने ग्रंथों में तेज का स्वरूप बताते हुये बताया कि तेज में एक विशेष नित्य समवाय संबंध तेज-गुण, रूप रहा हुआ है, वही रूप, तेज, हर प्राणी को आकर्षित करता है और उसको ग्रहण करने वाली आँख है। इन सब बातों से यह सरलता से समझ में आ सकता है कि मालकोश की ध्वनि का यही अभि-प्राय है कि मानव के अन्दर अज्ञान, अंधकार, मिथ्या ज्ञान, अविवेक जो रहा हुआ है उसे निकालने के लिये तेज शक्ति ताप और वैसे ही रूप की आवश्यकता रहती है कि वह अंधकार रूपी मिथयाभिमान से निकलकर वास्तविक अपने स्वरूप को देखे और उस तेज को ग्रहण कर अंधकार से छुटकारा पाये। कहावत भी है कि जिसके चहरे और वाणी में तेज (नूर) नहीं, वह नर होते हुये भी नराधम है। हम आप सभी यही बात कहते हैं कि सामान्य मानव की वाणी कितनी गंभीर और तेजपूर्ण है कि उसके वाणी को सुनकर क्रूर से क्रूर हिंसक प्राणी भी; जिस तरह आंच पाकर लोहा पिघल कर बहने लगता है, उसी प्रकार उसमें भी रहे हुये बुरे विचार पिघलकर बहने लगते हैं। ऐसी अवस्था में यदि हम मिथ्या अभिमान को एक बाजू में रखकर शान्त चित्त से विचार करें तो वास्तविकता हमारे समझ में आ जावेगी कि सामान्य जन की वाणी में ध्वनि का इतना प्रभाव है तो जो तीर्थंकर या अवतारी पुरुष या भगवान होते हैं उनकी वाणी की ध्वनि कितनी तेज युक्त रहती होगी कि उस वाणी के प्रभाव से तीनों लोक के प्राणी अपनी भूलों को स्वीकार करके उनके चरणों में मस्तक झुकाकर अपने को अहोभाग्य समझते हैं।

जैन दर्शन संसार को जब अनादि—अनंत मानता है तब यह कथन प्रागेतिहासिक काल का हो जाता है। इसलिये हम ऐतिहासिक दृष्टि से इसके विषय में भगवान महावीर की उपस्थिति में संगीत का जैन दर्शन में कितना स्थान था इसी को लक्ष्य कर ही इसका प्रति-पादन करते हैं। आगमों में जो संकलन किया गया वह क्रमबद्ध न होकर प्रसंगानुसार पाया जाता है। हमारे सामने इस समय जो संकलन है वह वाचना देववृद्धि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गणिका है। इसके पूर्व 3 वाचना का संकलन हुआ था जो लिपिबद्ध नहीं मिलता। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि वे वाचनायें पुनरावर्ती के रूप में मुखाग्रही करा दी गयी होंगी। यदि लेख रूप में होते तो कुछ अंशों में अवश्य मिलते। जैन आगमों के सिवाय अन्य प्रकरणों में और स्वतंत्र रूप से भी अति सूक्ष्म दृष्टि से लिखे गये ग्रन्थ संपूर्ण नहीं मिलते। उन ग्रन्थों का नाम अन्य ग्रन्थों में भी पाया जाता है। इसमें अनुमान लगाया जाता है कि कुछ असावधानी से खराब हो गये, कुछ बाहर विदेश चले गये और इसके पूर्व भारतीय दर्शन का अधिकांश भाग जैन, वैदिक आदि सभी दर्शनों सहित नष्ट कर दिया गया। इसलिये हमारे सामने जो वर्तमान में ग्रन्थ आगम आदि हैं उन्हीं के आधार पर कुछ दिग्दर्शन कराया जा सकता है। वर्तमान अनुसंधानकर्ता (रिसर्च करने वाले) वर्तमान ग्रन्थों के आधार पर ही अंतिम छाप लगा बैठते हैं। पर यह विचारणीय है कि अंतिम छाप तो वह लगा सकता है जो सर्वज्ञ और अंतरयामी हो। छद्‌मस्थ यदि ऐसा करता है तो यह उसकी अनाधिकार चेष्टा है।

वाद्यों से संबंधित ग्रंथ

स्थानाङ्ग 4

प्रस्तुत ग्रन्थ में वाद्यों के चारों प्रकारों के वर्गीकरण का उल्लेख है। जैसे :—

(1) तत् —तंतुवाद्य, वीणा आदि,

(2) तितत —मंढे हुये वाद्य, पटह आदि,

(3) घन —कांस्यताल

(4) झुशिर —शुषिर-फूंक द्वारा बजने वाले वाद्य, बांसुरी आदि।

राजप्रश्नीय सूत्र 64

प्रस्तुत ग्रन्थ में (1) शंख, (2) शृंग, (3) शंखिका, (4) खरमुही, (5) पेया (6) पीरिपिरिया—शूकर-पुटावनद्धमुखोवाद्य विशेष, (7) पणव—लघु पटह, (8) पटह, (9) होरंभ (10) महाढक्का, (11) भेरी, (12) झल्लरी, (13) दुंदुभि—वृक्ष के एक भाग को भेदकर बनाया गया वाद्य, (14) मुरज—शंकटमुखी, (15) मृदंग आदि 60 प्रकार के वाद्यों का उल्लेख किया गया है।

बृहत्कल्पभाष्यपीठिका 24 वृत्ति

इस पुस्तक में वाद्यों के नामों का निम्न प्रकार से उल्लेख मिलता है :—

(1) भंभा (2) मुकुन्द (3) मद्दल (4) कडंब (5) झल्लरि (6) हुडुक्क (7) कांस्यताल (8) काहल (9) तलिमा (10) वंश (11) पणव तथा (12) शंख।

स्थानाड ग 7, उ. 3 एवं अनुयोग द्वार

उपरोक्त ग्रन्थों में "संगीत" की व्याख्या विशद रूप से की गयी है। इसमें गीत के तीन प्रकार बताये गये हैं :—

(1) प्रारम्भ में मृदु (2) मध्य में ते (3) अन्त में मन्द।

गीत के दोष

(1) भीतं—भयभीत मानस से गया जाय,

(2) द्रुतं—बहुत शीघ्र शीघ्र गाया जाय,

(3) अपित्वं—श्वास युक्त शीघ्र गाया जाय अथवा ह्रस्व स्वर लघु स्वर से ही गाया जाय।

(4) उत्तालं—अति उत्ताल स्वर से व अवस्थान ताल से गाया जाय।

(5) काकस्वरं—कौए की तरह कर्ण-कटु शब्दों से गाया जाय।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(6) अनुनासिकम्—अनुनासिका से गाया जाय।

गीत के आठ गुण

(1) पूर्ण—स्वर, लय और कला से युक्त गाया जाय।

(2) रक्तं—पूर्ण तल्लीन होकर गाया जाय।

(3) अलंकृत—स्वर विशेष से अलंकृत होकर गाया जाय।

(4) व्यक्तं—स्पष्ट गाया जाय।

(5) अविघुष्टं—अविपरीत स्वर से गाया जाय।

(6) मधुरं—कोकिला की तरह मधुर गाया जाय।

(7) समं—ताल, वंश, व स्वर से समत्व गाया जाय।

(8) सुललितं—कोमल स्वर से गाया जाय।

अन्य आठ गुण

(1) उरोविशुद्ध—अक्षस्थल से विशुद्ध होकर निकलना।

(2) कण्ठविशुद्धं—जो स्वर भंग न हो।

(3) शिरोविशुद्धं—मूर्धा को प्राप्त होकर भी जो स्वर-नासिका से मिश्रित नहीं होता।

(4) मृदुक—जो राग कोमल स्वर से गाई जाय।

(5) रिंगित—आलाप के कारण स्वर अठखेलियां करता सा प्रतीत हो।

(6) पदबद्ध—जो गेय पद विशिष्ठ लालित्य युक्त भाषा में निर्मित किये गये हों।

(7) समताल प्रत्युत्क्षेप—नर्तकी का पाद निक्षेप और ताल आदि परस्पर मिले हों।

(8) सप्त स्वर सोमर—सातों स्वर अक्षरादि से मिलान खाते हों।

अक्षरादि सम भी सात प्रकार का है :—

(1) अक्षर सम—ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, सानुनासिका से युक्त।

(2) पद—सम : पद विन्यास से युक्त।

(3) ताल—सम : ताल के अनुकूल कर आदि का हिलाना।

(4) ग्रह—सम : बांसुरी या सितार की तरह गाना।

(5) लय—सम : वाद्य यंत्रों के साथ स्वर मिला कर गाना।

(6) निश्वसित्तोच्छ्वसितो—सम : श्वास ग्रहण करने और निकालने का क्रम व्यवस्थित।

(7) संचार—सम : वाद्य यंत्रों के साथ गाना।

प्रकारान्तर से अन्य आठ गुण :

(1) निर्दोषं—गीत के बत्तीस दोष से रहित गाना।

(2) सारवन्तं—विशिष्ठ अर्थ से युक्त गाना।

(3) हेतुयुक्तं—गीत से निबद्ध, अर्थ का गमक और हेतु युक्त।

(4) अलंकृतं—उपमादि अलंकारों से युक्त।

(5) उपनीतं—उपनय से युक्त।

(6) सोपचारं—कठिन न हो, विशुद्ध हो।

(7) मितं—संक्षिप्त व सार युक्त।

(8) मधुरंभ—मोग्य शब्दों के चयन से श्रुति मधुर।

छन्द के तीन प्रकार :—

(1) सम—चारों पाद के अक्षरों की संख्या समान।

(2) अर्धसम—प्रथम और तृतीय, द्वितीय और चतुर्थ पाद समान संख्या वाले हों।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(3) विषमसम—किसी भी पाद की संख्या एक दूसरे से नहीं मिलती हो।

सप्त-स्वर :—

(1) षडज : नासिका, कंठ, छाती, तालु, जिव्हा, दांत इन छह स्थानों से उत्पन्न।

(2) ऋषभ : जब वायु नाभि से उत्पन्न होकर कण्ठ और मूर्ध्वा से टक्कर खाकर वृषभ के शब्द की तरह निकलता हो।

(3) गांधार : जब वायु नाभि से उत्पन्न होकर हृदय और कण्ठ को स्पर्श करता हुआ सगंध निकलता हो।

(4) मध्यम : जो शब्द नाभि से उत्पन्न होकर हृदय से टक्कर खाकर पुनः नाभि में पहुँचे। अर्थात् अन्दर ही अन्दर गूँजता रहे।

(5) पंचम : नाभि, हृदय, छाती, कंठ और सिर इन पांच स्थानों से उत्पन्न होने वाला स्वर।

(6) धैवत : अन्य सभी स्वरों का जिसमें मेल हो, इसका अपर नाम धेवत भी है।

(7) निषाद : जो स्वर अपने तेज से अन्य स्वरों को दबा देता है और जिसका देवता सूर्य हो।

ग्राम और मूर्च्छनाएँ :

सात स्वरों के तीन ग्राम हैं :—

(1) षडज् ग्राम (2) मध्य ग्राम तथा (3) गांधार ग्राम।

षडज ग्राम की सात मूर्च्छनाएँ :

(1) मार्गी (2) कौरवी (3) हरिता (4) रत्ना (5) सारकान्ता (6) सारसी (7) शुद्ध षडजा।

मध्य ग्राम की सात मूर्च्छनाएँ :

(1) उत्तरमंदा (2) रत्ना (3) उत्तरा (4) उत्तरासमा (5) समकान्ता (6) सुवीरा (7) अभिरूपा।

गांधार ग्राम की सात मूर्च्छनाएँ :

(1) नदी (2) क्षुद्रिका (3) पूरिमा (4) शुद्ध गांधार (5) उत्तरगांधार (6) सुष्ठुतर मायामा (7) उत्तरायत कोटिया।

संगीत-शास्त्र में मूर्च्छनाओं के नाम अन्य उपलब्ध होते हैं :—

(1) ललिता (2) मध्यमा (3) चित्रा (4) रोहिणी (5) मतंगजा (6) सौबोरी (7) षण्मध्या।

(1) पंचमा (2) मत्सरी (3) मृदुमध्यमा (4) शुद्धा (5) अत्रा (6) कलावती (7) तीव्रा।

(1) रौद्री (2) ब्राह्मी (3) वैष्णवी (4) खेवरी (5) सुरा (6) नादावती (7) विशाला।

वर्तमान की उपलब्धियों से वैदिक ग्रन्थों के आधार पर भरत का नाट्यशास्त्र आदि माना जाता है, जिसमें संगीत विभाग (28 से 36 तक) है। उसमें गीत और वाद्यों का विवरण पाया जाता है किन्तु रागों के नाम और उनका विवरण नहीं बताया गया।

भरत के शिष्य दत्तिल, कोहल और विशाखिय इन तीनों ने ग्रन्थ की रचना की थी। प्रथम का दत्तिलम्, दूसरे का कोहलीयम और तीसरे का विशाखिलियम ग्रन्थ था। वर्तमान में विशाखिलम् अप्राप्त है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मध्यकाल में हिन्दुस्तानी और कर्णाटक की पद्धतियों का प्रचार हुआ और उसके साथ आचार्यों ने संगीत पर अनेक ग्रन्थ भी लिखने प्रारंभ कर दिये। सन् 1200 में सब पद्धतियों का मंथन कर शारंगदेव ने, "संगीत रत्नाकार" नामक ग्रंथ लिखा। उस पर छः टीका ग्रंथ भी लिखे गये। इनमें से चार टीका ग्रंथ उपलब्ध नहीं हैं। अर्धमागधी (प्राकृत) में रचित "अनुयोग द्वार" सूत्र में संगीत विषयक सामग्री पद्य में मिलती है। इससे ज्ञात होता है कि प्राकृत संस्कृत में भी अनेक ग्रंथ रहे होंगे क्योंकि कोई भी ग्रंथ लिखने के लिये उसके पूर्व की आधारशिला आवश्यक रहती है। उपरोक्त जैन आगमों और अन्य ग्रन्थों के आधार पर जैन आचार्यों ने भी संगीत पर कुछ ग्रन्थों कि रचना अति पैनी दृष्टि से की है।

"संगीत समयसार"

(यह ग्रन्थ त्रिवेन्द्रम संस्कृत ग्रन्थमाला में छापा गया है)।

दिगम्बर जैन मुनि अभयचन्द के शिष्य महादेवाचार्य और उनके शिष्य पार्श्वचन्द्र ने, "संगीत समयसार" नाम के ग्रन्थ की रचना लगभग वि. सं. 1380 में की है। इस ग्रन्थ में नव अधिकरण है, जिनमें नाद, ध्वनि, स्थायी, राग, वाद्य, अभिनय, ताल, मस्तार और आध्वयोग—इस प्रकार अनेक विषयों पर प्रकाश डाला गया है। इसमें प्रताप दिगम्बर और शंकरनामक ग्रन्थों का उल्लेख पाया जाता है और भोज, सामेश्वर, परमर्दी इन तीन राजाओं का नाम भी पाया जाता है। (विशेष परिचय के लिये देखें जैन सिद्धांत भास्कर भाग-9 अंक-2 और भाग-10 अंक-10)।

"संगीतोपनिषत् सारोद्धार"

यह ग्रन्थ आचार्य राजशेषर सूरि के शिष्य सुधाकलश ने वि. सं. 1406 में लिखा। यह ग्रंथ गायकवाड़ा आरियेन्टल सीरीज, बड़ौदा से प्रकाशित हो गया है। यह ग्रन्थ स्वयं सुधाकलश द्वारा वि. सं. 1380 में रचित "संगीतोपनिषद" का स्वरूप है। इस ग्रंथ में 6 अध्याय हैं और 610 श्लोक हैं। प्रथम अध्याय में गीत प्रकाशन, दूसरे में प्रशस्ति सौपाश्रय—ताल प्रकाशन, तीसरे में गुणस्वर रागादि प्रकाशन और छठें में नित्य पद्धति प्रकाशन है।

यह कृति "संगीत मकरंद" और संगीत पारिजात से भी विशिष्ठतर और अधिक महत्व की है।

इस ग्रंथ में नरचन्द्र सूरि का, "संगीतज्ञ" के रूप में भी उल्लेख हुआ है। प्रशस्ति में अपनी "संगीतोपनिषत्" रचना के वि. सं. 1380 होने का उल्लेख भी है।

मलधारी, अभयदेवसूरि की परम्परा में अभीचन्द्र सूरि हो गये हैं। वे संगीत-शास्त्र में विशारद थे, ऐसा उल्लेख सुधाकलश मुनि ने किया है।

"संगीतोपनिषत"

आचार्य राजशेखर सूरि के शिष्य सुधाकलश ने "संगीतोपनिषत" ग्रन्थ की रचना सं. 1308 में की ऐसा उल्लेख ग्रन्थकार ने स्वयं सं. 1406 में अपने "संगीतोपनिषत सारोद्धार" नामक ग्रन्थ की प्रशस्ति में किया है। यह बहुत बड़ा था जो अभी तक उपलब्ध नहीं हो पाया।

सुधाकलश ने "एकाक्षरनाम माला" की भी रचना की है।

"संगीत मंडन"

मालवा—मांडवगढ़ के सुलतान आलमशाह के मंत्री मंडन ने विविध विषयों पर अनेक ग्रंथ लिखे हैं। उनमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"संगीत मंडल" भी एक है। इस ग्रंथ की रचना सं. 1490 के आस-पास हुई है। इसकी हस्त-लिखित प्रति मिलती है। ग्रंथ अभी तक अप्रकाशित है।

"संगीत दीपक, संगीत रत्नवाली, संगीत पिंगल"

इन तीनों ग्रंथों का उल्लेख जैन ग्रन्थावली में मिलता है। परन्तु इनके विषय में अभी तक नाम के सिवाय विशेष जानकारी नहीं मिलती।

नाट्य

यो यं स्वभावो लोकस्य सुख दुःख समन्वितः।
सोआंगाद्यभिनयो येतो, नाट्यमित्यभिधीयते॥

दुःखी, शोकार्त, श्रांत एवं तपस्वी व्यक्तियों को विश्रांत देने के लिये नाट्य की सृष्टि की गयी। सुख-दुःख से युक्त लोक स्वभाव ही आंगिक, वाचिक इत्यादि अभिनवों से युक्त होने के कारण नाट्य कहलाता है। नाट्य मुद्रायें और चित्रकला—प्राणियों के लिये एक विशेष स्वाभाविकता रही है, जिसके आधार पर ही यह अपने मानसिक, वाचिक और कायिक भावों का दूसरों पर प्रभाव डालता है। नाट्यकला, मुद्राकला और संगीत कला ये तीनों कला आपस में इस तरह मिली हुई हैं कि जिस प्रकार सूर्य से ताप या प्रकाश अलग नहीं किया जा सकता। मानव के अंतःस्थल में जन भावावेश की जागृति होती है। तद्नुकूल उसकी मानसिक, वाचिक तथा कायिक चेष्टायें स्वतः स्वाभाविक (नेचुरल) प्रकट होने लगती हैं। ये तीनों कलायें सीखनी नहीं पड़तीं। वह (मानव) जन्म से ही साथ लेकर जन्मता है और मरणोपरांत भी पुनर्जन्म के समय उसके साथ बनी रहती हैं। लोक आकर्षण के लिये मानसिक प्रवृत्ति न होने पर भी वैसा भाव दिखाना जब कभी आवश्यक होता है और उसका निराकरण करना भी आवश्यक होता है ऐसी अवस्था में उसमें विशेष रूप से शिक्षा-दीक्षा आदि देकर साधक की रुचि के अनुसार उसमें उसे प्रवीण करा दिया जाता है। किसी भी कार्य की पूर्ति के लिये मुख्य दो साधन होते हैं। प्रथम आंतरिक तथा दूसरा वाह्य। वाह्य साधन आंतरिक का पूरक है। इसलिये ग्रंथों का प्रकाशन शिक्षा-दीक्षा जितने भी कार्य किये या कराये जाते हैं, आंतरिक भावों की जागृति विशेष के लिये ही होते हैं। वह जागृत अवस्था चाहे भौतिक वस्तु की प्राप्ति के लिये हो अथवा आध्यात्मिक निःश्रेय मार्ग को प्राप्त करने के लिये हो; यह तो साधक के मानसिक विचारों और उसके पक्ष पर ही आधारित है। ऋषि-मुनियों ने जो मार्ग दर्शन हमें कराया उनका एकमात्र लक्ष्य निश्रेय मार्ग अर्थात् अपवर्ग मार्ग का ही विशेष लक्ष्य रहा है। परंतु भौतिक या अर्थ की ओर जिनका लक्ष्य रहा, उन्होंने इसका उपयोग अर्थ प्राप्ति के लिये ही किया। इससे इन कलाओं में स्वाभाविक गुण और शक्ति का ह्रास होने लगा है क्योंकि लक्ष्य, लोक रुचि की ओर होने से लोक रुचि अनुसार रंजकता लाने के लिये इन रागों, मुद्राओं और नाट्य कलाओं में परिवर्तन करना पड़ता है। इससे वहां की वस्तुकला वास्तविकता से हटकर अपने स्वरूप को खो बैठती है।

"नाट्य दर्पण"

कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्र सूरि के दो शिष्यों कवि कहारयल विरुद्धधारक रामचन्द्र सूरि और उनके गुरु भाई गुणचन्द्र गणि ने मिलकर "नाट्यदर्पण" की रचना वि. सं. 1200 के आस-पास की है।

नाट्यदर्पण में चार विवेक हैं जिनमें सब मिलकर 207 पद्य हैं।

प्रथम विवेक "नाट्यदर्पण" में नाटक संबंधी सब बातों का निरूपण किया गया है। इसमें 1 नाटक, 2 प्रकरण, 3 नाटिका, 4 प्रकरणी, 5 व्यायोग, 6 समवकार, 7 भाण, 8 प्रहसन, 9 डिम, 10–उत्तस्रास्ति-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कार्तक 11 इहामृता तथा 12 वीथी—इस प्रकार बारह प्रकार के रूपक बताये गये हैं। पांच अवस्थाओं और पांच संधियों का भी उल्लेख है।

द्वितीय विवेक "प्रकरणाद्यकादशनिर्णय" में प्रकरण से लेकर बीथी तक के 11 रूपकों का वर्णन है। इसमें वृत्ति, रस, भाव और अभिनय का विवेचन है।

तृतीय विवेक "वृत्तिरस-भावाभिनय विचार" में चार वृत्तियों, नव रसों, नव स्थायी भावों, तेंतीस व्यभिचारी भावों, रस आदि आठ अनुभावों और अभिनवों का निरूपण है।

चतुर्थ विवेक "सर्वरूपक साधारण लक्षण निर्णय" में सभी रूपकों के लक्षण बताये गये हैं।

आचार्य रामचन्द्र सूरि समर्थ आशुकवि के रूप में प्रसिद्ध थे; गुण-दोषो के बड़े परीक्षक थे। इन्होंने नाटक आदि अनेक ग्रंथों की रचना की। गुरु हेमचन्द्रचार्य ने जिन नाटक आदि ग्रन्थों पर नहीं लिखा था उन विषयों पर इन्होंने अपनी लेखनी चलाई। ये प्रबंध शतकर्ता भी माने गये हैं। प्रबंध शतक ग्रन्थ अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है। ऐसे समय कवि की अकाल मृत्यु सं. 1230 के आस-पास राजा अजयपाल के निमित्त हुई। ऐसी सूचना प्रबंध से मिलती है। इनके गुरुभाई गुणचन्द्र सूरि भी समर्थ विद्वान थे। उन्होंने "सवृत्तिक द्रव्यालंकार" आचार्य रामचन्द्र सूरि के साथ रचना की है।

आचार्य रामचन्द्र सूरि ने जो ग्रन्थ लिखे हैं, उनमें वर्तमान समय में निम्नलिखित ग्रन्थ उपलब्ध हैं :—

(1) कौमुदीमियाणंद (प्रकरण), (2) नलविलास (नाटक), (3) निर्भय, (4) मल्लिकामकरंद (प्रकरण), (5) यादवाभ्युदय (नाटक), (6) रघुविलास (नाटक), (7) राघवाभ्युदय (नाटक), (8) रोहिणी मृगांक (प्रकरण), (9) बनमाला (नाटिका), (10) सत्यहरिश्चन्द्र (नाटक), (11) सुधाकलश (कोष), (12) आदिदेवस्तवन, (13) कुमार विहारशतक, (14) जिनस्तोत्र, (15) नेमिस्त्व, (16) मनुसुव्रस्त्व, (17) यदुविलास, (18) सिद्धहेमचन्द्र, शब्दानुशासन, लघुन्यास, (19) सोलह साधारण जिनस्त्व, (20) प्रसादद्वात्रिशिकर, (21) युगादिद्वात्रिशिका, (22) व्यतिरेकद्वात्रिशिका, (23) प्रबंधशत—यह ग्रंथ अभी तक अप्राप्त है।

"आचार्य दर्पणवृत्ति"

आचार्य रामचन्द्र सूरि और गुण चन्द्र गणि ने अपने नाट्यदर्पण पर स्वोषज्ञ विवृत्ति की रचना की है। इसमें रूपकों के उदाहरण 55 ग्रन्थों से दिये गये हैं। स्वरचित कृतियों से भी उदाहरण लिये हैं। इसमें उपरूपकों के स्वरूप का आलेख किया गया है।

घनंजय के "दशरूपक" ग्रंथों को आदर्श रूप में रखकर यह विवृत्ति लिखी गयी है। बिवृत्तिकार ने कहीं-कहीं घनंजय के मत से भिन्न मत भी प्रदर्शित किया है। भरत के नाट्य में पूर्वापर विरोध है, ऐसा भी उल्लेख किया है। अपने गुरु आचार्य हेमचन्द्राचार्य के "काव्यानुशासन" में भी कहीं-कहीं भिन्न मत का भी निरूपण मिलता है। इस दृष्टि से यह कृति विशेष तौर से अध्ययन करने योग्य है। नाट्यदर्पण स्वपोत विवृत्ति के साथ गायकवाडा ओरियेन्टल सीरीज में दो भागों में छपा है। इस ग्रन्थ का के. एच. त्रिवेदिकृत आलोचनात्मक अध्ययन लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर, अहमदाबाद, से प्रकाशित हुआ है।

"प्रबंध शतक"

आचार्य हेमचन्द्र सूरि के शिष्यत्व आचार्य रामचन्द्र सूरि ने 'नाट्यदर्पण" के अतिरिक्त नाट्यशास्त्र विषयक "प्रबंध शतक" नामक ग्रंथ की भी रचना की थी जो अप्राप्य है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कला

"चित्रवर्ण संग्रह"

सोमराज रचित "रत्न परीक्षा" ग्रन्थ के अंत में "चित्रवर्ण" संग्रह के 42 श्लोकों का प्रकरण अत्यंत उपयोगी है।

इसमें भित्तचित्र बनाने के लिये भित्ति कैसी होनी चाहिये, रंग कैसा बनाना चाहिये, इत्यादि ब्योरेवार वर्णन है।

प्राचीन भारत में सित्तनबासल, अजंता, वाघ आदि गुफाओं में और राजा-महाराजों तथा श्रेष्ठियों के प्रसादों में चित्रों को जो आलेखित किया जाता था, उसकी विधि इस छोटे से ग्रंथ से बताई गई है। यह प्रकरण अप्रकाशित है।

"कला-कलाप"

वायड गच्छीय जिनदत्त सूरि के शिष्य अमरचन्द्र सूरि की कृतियों के बारे में प्रबंध कोश में उल्लेख है, जिसनें "कला-कलाप" नामक कृति का भी निर्देश है। इस ग्रंथ का शास्त्र रूप में उल्लेख है। परन्तु अभी तक यह अप्राप्य है। इसमें 72 या 74 प्रकरणों का निरूपण है, ऐसी संभावना है।

"मसी-विचार"

"मसी-विचार" नामक ग्रन्थ जेसलमेर भंडार में है, जिसमें ताड़पत्र और कागज पर लिखने की स्याही बनाने की प्रक्रिया बतायी गयी है। इसका जैन ग्रन्था-वली पृ. 362 में उल्लेख है।

□ □

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org